जैव विविधता संरक्षण में धार्मिक वनों का महत्वः एक पहल

श्रीकर पंत
गोविन्द बल्लभ पंत हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्थान, कोसी–कटारमल, अल्मोड़ा 263 643, उत्तरांचल

मनुष्य अपने उद्‌भव काल से ही वनों तथा उसमें पायी जाने वाली वनस्पतियों पर निर्भर रहा है, और अपनी आवश्यकता–पूर्ति के लिए इनका विकास भी करता रहा, ताकि वह इसका उपयोग भविष्य में कर सके।

वनों तथा वृक्षों के अस्तित्व के साथ, मानव तथा समस्त प्राणियों का अस्तित्व जुड़ा है। वन तथा वनस्पतियॉ हमारे जीवन के रक्षा–कवच हैं। वनों के द्वारा ही विश्व की महानतम् सभ्यताओं का विकास हुआ है जो कि मानव के क्रमिक विकास के चरणों में उसका अभिन्न अंग बने। जहॉ तक भारतवर्ष की सभ्यता का सम्बन्ध है, हमारी सभ्यताओं में वनों के साथ हमारी संस्कृति, कला, धर्म, पारम्परिक आस्थायें भी जुड़ी हुई हैं। जिनका जीवन्त उदाहरण हमारे पौराणिक ग्रन्थों तथा महाकाव्यों में परिलक्षित होता है। 'अरण्य काण्ड' तथा 'वन–पर्व' का उल्लेख क्रमशः रामायण तथा महाभारत के ग्रन्थों में मिलता है जिसमें व्यासजी ने वनों के संरक्षण तथा रोपण की बात कही है उनके अनुसार वन और जीवन एक दूसरे के पूरक हैं।

जैसे–जैसे मानव विकास की ओर अग्रसर होता रहा, उसकी आवश्यकताएँ भी बढ़ती गयीं और वह उन्हें पूरा करने के लिए अपने आस–पास की वन सम्पदा का उपयोग करने लगा। परिणाम स्वरूप जैव–सम्पदा एवम् पारिस्थितिकी तन्त्र को खतरा उत्पन्न होने लगा, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण ग्लोबल वार्मिंग, ग्लेशियर का पिघलना व वन क्षेत्र का कम होना है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह हम सभी का दायित्व है कि जैव–सम्पदा को संरक्षित किया जाय, जिससे उसका उपयोग भविष्य में लम्बे समय तक किया जा सके।

जैव विविधता संरक्षण की अनेकों विधियों में से धार्मिक–वनों का अपना एक अलग महत्व है। वनों का वह क्षेत्र जो कि किसी देवी–देवता को समर्पित होता है, उस वन–क्षेत्र को 'धार्मिक वन' कहते हैं। इस प्रक्रिया में स्थानीय जनता द्वारा किसी वन–क्षेत्र को अपनी लोक आस्थाओं तथा संस्कृति के अनुरूप देवी–देवताओं को समर्पित किया जाता है, जिसे किसी भी प्रकार की उपयोग सम्बन्धी गतिविधियों से मुक्त रखा जाता है।

जैव–सम्पदा/विविधता संरक्षण की इस नीति का उपयोग हमारे समाज में प्राचीन काल से ही होता आया है। दैव–वन, खाण्डव–वन, कदली–वन, लोध–वन, द्वारका–वन, श्वेत–पर्वत, कैलाश–पर्वत इत्यादि का वर्णन पौराणिक महाकाव्य महाभारत में भी वर्णित है।

उत्तराखण्ड क्षेत्र में भी कई स्थानों पर कई प्रजातियॉ तथा उनके वन बहुतायत में मिलते हैं जो किसी न किसी रूप में वहॉ की लोक–संस्कृति, आस्था तथा परम्परागत ज्ञान से जुड़े हुए हैं। उदाहरणतः गढ़वाल मण्डल में नन्दादेवी पर्वत का वन क्षेत्र, हेमकुण्ड, रूपकुण्ड, वेदनी बुग्याल, नर–नरायण पर्वत इत्यादि। कुमाऊँ मण्डल में जागेश्वर, झाकरसेम, बूबूधाम (रानीखेत), डोल, सोमेश्वर, स्याही देवी, बानणी देवी, भटकोट में बूढ़पिनाख (पिनाखेश्वर) आदि। कुछ यात्राएं (नन्दा राजजात, कैलाश मानसरोवर), मेले (जौलजीवी का मेला, मैती का मेला, नन्दा देवी का मेला) पौराणिक काल से ही हमारी आस्थाओं के प्रतीक है। जो किसी न किसी रूप से देवी–देवताओं से जुड़े हुए हैं।

परन्तु आज तक इतने बड़े प्राकृतिक भण्डारों में से सिर्फ पिथौरागढ़ जिले के मुनस्यारी में 'छिपलाकेदार' के जंगलों को ही वहॉ की स्थानीय जनता द्वारा पूर्णतः 'धार्मिक वन' घोषित किया गया है। जिससे इस क्षेत्र में पायी जाने वाली प्रजातियॉ जो कि हमारी धार्मिक आस्थाओं से जुड़ी हैं, उनका संरक्षण स्वतः ही होता आया है। परन्तु आज के तेजी से विकास की ओर बढ़ते हुए युग में हमारी लोक–आस्थाएँ, संस्कृति, तथा परम्परागत ज्ञान धीरे–धीरे विकास की चमक के सामने धुँधले से प्रतीत हो रहे हैं। अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हम उनके दोहन से भी पीछे नहीं हट रहे हैं और उनका लगातार दोहन करते जा रहे हैं।

वर्तमान परिस्थितियों को मद्देनजर रखते हुए आज के वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं तथा पर्यावरणविदों को इस प्रकार के परम्परागत ज्ञान को जीवित रखने की अत्यन्त आवश्यकता है। अन्यथा इस प्रकार के पारम्परिक

ज्ञान का स्त्रोत जो आज हमारे बीच सामाजिक तथा सांस्कृतिक रूप में विद्यमान है, तीव्र गति से हो रहे परिवर्तन के कारण विलुप्त हो जायेगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हमें अपनी लोक संस्कृति तथा सभ्यताओं को बचाने के लिए ठोस कदम उठाने पड़ेंगे व शीघ्र–अतिशीघ्र ऐसे स्थानों को चिन्हित कर उन्हें लोक दैवीय आस्थाओं के अन्तर्गत 'धार्मिक–वनों' की उपाधि प्रदान करनी होगी। जिससे लोक आस्थाओं के कारण उनका संरक्षण किया जा सके।

आज सिर्फ आवश्यकता है, तो संरक्षण की पहल करने की जिससे कि हम अपनी पारम्परिक लोक सभ्यता को संरक्षित करते हुए, जैव सम्पदा का सतत् उपयोग करने के साथ–साथ उसका संरक्षण भी कर सकें। जिससे इस अमूल्य परम्परागत ज्ञान के विकास का नया अध्याय शुरू होगा और साथ ही साथ हम अपनी भावी पीढ़ी को यह विरासत उपहार स्वरूप प्रदान कर सकेंगे।

सम्बन्धित संदर्भ

जोशी, मिताली; हरीश अण्डोला, एवं वंदना बिष्ट 2003. उत्तरांचल की धार्मिक लोक संस्कृति के परिपेक्ष्य में जैव विविधता, हिमालय की जैव विविधता (संरक्षण में जनता की भागीदारी). जैव विविधता संरक्षण विभाग, गोविन्द बल्लभ पंत हिमालय पर्यावरण एवम् विकास संस्थान कोसी–कटारमल, अल्मोड़ा.

सामन्त, एस0एस0 एंड एस0 पंत 2003. डाइवर्सिटी डिस्ट्रीब्यूसन पैर्टन एंड ट्रेडिसनल नोलेज आफ सेकरेड प्लान्टस् इन् इंडियन हिमालयन रीजन्. इंडियन जरनल आफ फारेस्ट्री, 26(3): 201–213. (इन् इंग्लिस)

त्रिवेदी, जी0एस0; एवं ए0 अग्रवाल 1989. महाभारत के वृक्ष और वन. गीतिका पब्लिशर, देहरादून.